ISSN 097-6459

शोध-संप्रेषण

SHODH-SAMPRESHAN

A Peer Reviewed Refereed Quarterly Multidisciplinary Research Journal

e-mail : shodhsampreshan36@gmail.com

RRDC
Research & Research Development Centre
Research Journal
Conferences
Seminars
International Events

शोध एवं अनुसंधान के लिए समर्पित अंतरराष्ट्रीय रिसर्च जर्नल

International Research Journal for Research & Research Activities

Scanned with CamScanner

ISSN 097- 6459

जनजातीय जीवन में अलगाव की समस्या और हिन्दी उपन्यास

भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात प्रथम दशक में भारत सरकार ने भी अलगाव की नीति थोड़े–बहुत परिवर्तनों के साथ बरकरार रखी। हालांकि ब्रिटिश शासन की तुलना में धीरे–धीरे जनजातियों के कल्याण के कार्यक्रम शुरू किये गये, लेकिन इसके बावजूद वे नाकाफी साबित हुए। ठक्कर आयोग ने जनजातियों के विकास के लिए अलगाव की नीति की जगह उनके शोषण को समाप्त करने का सुझाव दिया था,

भारतीय जनजातियाँ प्रायः दूरदराज और पहुंच विहीन क्षेत्रों में निवास करती हैं। इसके कारण सामान्य जनजीवन से उनका घनिष्ठ सम्पर्क नहीं हो पाता। लेकिन इससे जनजातीय जीवन में कोई विशेष समस्या पैदा नहीं हुई क्योंकि उनका जीवन आत्मनिर्भर था। जनजातीय समाज में अलगाव की समस्या मुख्य रूप से औपनिवेशिक काल की देन है। अंग्रेजों ने सोची समझी रणनीति के तहत जनजातियों को विकास की मुख्य धारा से अलग रखा। इसके लिए उन्होंने जनजातीय क्षेत्रों को एकदम अलग कर दिया और आम लोगों को वहाँ जाने की मनाही कर दी। कुछ ठेकेदारों, सूदखोरों तथा महाजनों को जो कि अंग्रेज प्रशासकों के चाटुकार थे, वहाँ जाने की इजाजत दे दी गई। फलतः उन लोगों ने आदिवासियों का मनमाने तरीके से शोषण किया। इन क्षेत्रों में आवागमन की सुविधा का विकास न के बराबर किया गया, जिससे ये क्षेत्र पृथक ही रहे। भारत सरकार अधिनियम, 1870 के द्वारा कई क्षेत्रों को अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर दिया गया। इसके बाद भी विभिन्न अधिनियमों के माध्यम से आदिवासियों के अलगाव की नीति जारी रखी गयी। इन क्षेत्रों की प्रशासनिक व्यवस्था ब्रिटिश गवर्नर जनरल के अधीन हुआ करती थी जिसे इन क्षेत्रों के शोषण और दोहन से ही मतलब था। फलतः इनके विकास हेतु कार्य नहीं किये जाते थे। इसका स्वाभाविक दुष्परिणाम यह हुआ कि आदिवासी विकास की मुख्य धारा से कट गये।

भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात प्रथम दशक में भारत सरकार ने भी अलगाव की नीति थोड़े–बहुत परिवर्तनों के साथ बरकरार रखी। हालांकि ब्रिटिश शासन की तुलना में धीरे–धीरे जनजातियों के कल्याण के कार्यक्रम शुरू किये गये, लेकिन इसके बावजूद वे नाकाफी साबित हुए। ठक्कर आयोग ने जनजातियों के विकास के लिए अलगाव की नीति की जगह उनके शोषण को समाप्त करने का सुझाव दिया था, लेकिन सरकार ने इस दिशा में विशेष प्रयत्न नहीं किया। आज स्वतंत्रता प्राप्त होने के लगभग 73 वर्षों के बावजूद आदिवासी अपने आप को अलग–थलग महसूस करते हैं। इसके पीछे बहुत हद तक सरकारी तंत्र की उदासीनता, जनजातियों के प्रति कारगर नीति का अभाव, आम सोच और प्रशासनिक अकुशलता जिम्मेवार है। हालांकि विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों में सरकार ने आदिवासियों के उत्थान के लिए प्रयास किये हैं, लेकिन ये प्रयास आदिवासियों की समस्याओं की तुलना में बहुत सीमित हैं।

आदिवासियों में अलगाव की भावना को हिन्दी के कई उपन्यासों में अभिव्यक्त किया गया है। लेखकों ने उनके अंदर उपज रहे असंतोष और हीनभावना को पूरी संवेदना के साथ अंकित किया है। आज आदिवासियों के मन में कहीं न कहीं यह पीड़ा है कि तथाकथित सभ्य समाज उनके और अपने बीच फर्क करता है। उनको समाज में प्रायः हेय दृष्टि से देखा जाता है। संजीव के उपन्यास 'सावधान! नीचे आग है' में सपन मंडल अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए झानू से कहता है –"स्कूल है, मगर हमारे बच्चे सेमल के पेड़ तले पढ़ेंगे, उनके लिए स्कूली लंबी–लंबी बसें। नौकरी है, मगर वो हमारे लिये नहीं। बिजली है, मगर वो पहलवानों के अखाड़े के लिए है, हमारे लिये नहीं। कोक डीपो यूनियन के दलाल लोग खोल सकते हैं, मगर हमारे बेकार बच्चे नहीं।"[1] संजीव ने अपने उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में भी अलगाव की भावना और इससे आदिवासियों में उपजे असंतोष को चित्रित किया है। उपन्यास का प्रमुख पात्र काली समाज की उस

डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (हिन्दी)
शास. महाविद्यालय बलरामपुर (छ.ग.)

Scanned with CamScanner